INTERNATIONAL JOURNAL OF HISTORY

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
IJH 2020; 2(2): 115-116
Received: 01-05-2020
Accepted: 04-06-2020

डॉ. श्रवण कुमार ठाकुर
इतिहास, ल०ना०मि०वि, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. श्रवण कुमार ठाकुर
इतिहास, ल०ना०मि०वि, दरभंगा, बिहार, भारत

औपनिवेशिक भारत का प्रेस भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का 'सेफ्टी-वाल्व'

डॉ. श्रवण कुमार ठाकुर

सारांश
औपनिवेशिक भारत के भारतीय प्रेस व समाचार-पत्र के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इस युग का भारत ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध-विच्छेद की बात नहीं सोचता था|यह समझा जाता था कि भारत पर ब्रिटिश सत्ता का रहना उसके हित में है क्योंकि इससे भारत की एकता को बल मिलता है और उसके भौतिक और सांस्कृतिक हितों का साधन होता है| इसी के साथ-साथ भारत सरकार के प्रशासन से प्रेस असंतुष्ट थे| जिसके कारण खर्चीले युद्ध, व्यय में वृद्धि, अधिक टैक्स, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सामाजिक और बौद्धिक कल्याण के कार्यों की उपेक्षा होती थी| उच्च सेवाओं से भारतियों कोअलग रखने और बहुत खर्चीले ब्रिटिश अधिकारिओं की नियुक्ति, भारतियों को भाग न देना, जिसका मतलब था उनकी बौद्धिक सामर्थ्य और ईमानदारी में अविश्वास इन सबसे जनता में गहरी और लगातार नाराजगी पैदा होने लगी थी|जिससे प्रेस व पत्रिका भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेफ्टी-वाल्व के रूप में कार्य करने लगे थे|

मुख्यशब्दः औपनिवेशिक भारत, समाचार-पत्र, प्रेस, एकता, सेफ्टी-वाल्व, स्वतंत्रता-संग्राम, सरकार, प्रशासन

प्रस्तावना

एक समस्या, जिससे सरकार पर बराबर अविश्वास बना रहा और साथ ही भारतीय सम्प्रदायों में भी कटुता बढ़ती रही, वह थी हिन्दू-मुस्लिम तनाव| भारतीय पत्र इस समस्या पर अलग-अलग मत रखते थे| हिन्दुओं के और हिन्दुओं द्वारा सम्पादित पत्र या तो मुसलमानों पर हठ और दुराग्रह का दोष लगाते थे और कहते थे कि हिन्दुओं की भावना का वे ख्याल नहीं करते या या ब्रिटिश अधिकारिओं पर यह दोष लगाते थे कि वे मुसलमानों को भड़काते हैं जिससे लोगों में फूट रहे और ब्रिटिश शासन चलता रहे| मुसलमान भी इसी नक़्शे-कदम पर चलते रहे और ब्रिटिश प्रशासन इसे नजर अंदाज़ करते रहा| दोनों सम्प्रदाय के बुद्धिमान समाज के अदूरदर्शी लोगों की कट्टरता एवं अशिक्षा के सामने असहज हो जाते थे| [1]

इस प्रकार के 19 वीं सदी के अंतिम चरण में भारतीय पत्रों के प्रभाव में काफी वृधि हुई| हर प्रान्त में भारतीय मालिकों के अंग्रेजी पत्र, अंग्रेजी पढ़े-लिखे वर्ग को समाचार और विचार देते रहे और भारत के सारे प्रान्तों के शिक्षित वर्ग को एक तरह के विचार और एक तरह की भावनाओं के बंधन में बांधते रहे| जिससे स्वतः औपनिवेशिक भारत में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के बीज अंकुरित होने लगे थे|

विश्लेषण और व्याख्या

पत्रकारिता के प्रति सरकार और प्रशासन का रुख संदेह और नाराजगी का था| पहले सरकार ने नई प्रवृति को गंभीरता के साथ नहीं लिया| सन 1885 ई० में पत्रों के सम्बन्ध में रिपोर्ट में यह बताया गया कि भारतीय पत्रों की शैली और लेख आदिआपत्तिजनक होते हैं, फिर भी उनका कोई महत्व नहीं है, क्योंकि उनमें बंगला साहित्य में प्रचलित अतियुक्तिपूर्ण शैली का ही अनुकारण किया जाता था| भाषा या शैली चाहे जो भी हो, सरकार के उद्देश्य में किसी प्रकार अविश्वास नहीं था और न स्वतंत्रता के लिए कोई विशेष व्यग्रता ही ही जाहिर हो रही थी| रिपोर्ट लिखने वालों के अनुसार असली गड़बड़ी यह थी कि सरकार के उदेश्यों के सम्बन्ध में लोगों को जानकारी नहीं थी और इसका प्रतिकार यह था कि लोगों को आवश्यक तथ्य और व्याख्याएँ आदि बराबर दी जाएँ|सन 1887 में बंगाल सरकार के मुख्य सचिव, पत्रों के बहुत कर्कश लहजे की शिकायत कर रहे थे| उन्होंने लिखा— "सच बात तो यह है कि देशी पत्रों के विश्लेषण से यह पता लगता है लगभग सारे का सारा लेखन केवल सरकार के कार्यों और उद्देश्यों की शत्रुताभरी और निन्दापूर्ण आलोचना होती है|" [2] सन 1902 में फिर इस शिकायत की पुनरावृति की गई—"योग्य से योग्य लेखक भी विनाशात्मक आलोचना करते हैं

और समस्याओं को बहुत तोड़-मरोड़ कर और कर्कश ढंग से प्रस्तुत करते हैं| अक्सर उनका लेखन कटुता और द्वेष से प्रेरित होता है|" [3]

बाम्बे प्रेसीडेंसी के अख़बार भी उन्हीं प्रवृतियों को प्रदर्शित कर रहे थे जिन्हें बंगाल के पत्र कर रहे थे और सरकार की ओर से उनके सम्बन्ध में वही प्रतिक्रिया हुई| सन 1880 ई० में भारतीय पत्रों पर प्रशासनिक रिपोर्ट [4] में यह कहा गया—" सरकार के प्रति देशी पत्रों का आम लहजा हमेशा की तरह सारे साल राजभक्तिपूर्ण रहा, पर साथ ही एक नया स्वर भी सुनाई पड़ा| 'काल', 'केशरी', 'मराठा' ऐसे पत्र रंगमंच पर आ चुके थे और वे एक नवयुग के सूचक थे| 'केशरी' और 'मराठा' ने चिपलूनकर, आगरकर, तिलक, आप्टे, खाडिलकर, केलकर जैसे दुर्दान्त देशभक्त तथा प्रतिभाशाली लेखकों का सहयोग प्राप्त किया था|वे पत्रकारिता को पेशा नहीं मानते थे, बल्कि राष्ट्रीयता के प्रचार के लिए एक मिशन मानते थे| ब्रिटिश सरकार के अथक शत्रु तिलक सन 1889 ई० से 1920 तक इन पत्रों की प्रेरक शक्ति के रूप में मौजूद थे| शिवराम महादेव परांजपे द्वारा सम्पादित 'काल' तीसरा पत्र था, जो बहुत जोरों के साथ राष्ट्रीय विचारों का प्रचार करता था| ये तीनों पत्र इतनेजनप्रिय हो गए कि 'इन्दुप्रकाश' और 'ज्ञानप्रकाश' पीछे रह गए| उन्होंने सारे समाज के रुख कोबदल दिया| समाज सुधार का लक्ष्य कुछ हद तक पीछे हट गया और सुधारकों को सनातनी भावना और राजनीति की गति के सामने दबना पड़ा| [5]

सन 1903 ई० में बम्बई की प्रेस रिपोर्ट [6] में भारतीय पत्रों को निम्न श्रेणियों में बांटा है:-

(1) मराठी पत्र जो मुख्यतः चितपावन ब्राह्मणों के हाथों में है और ब्रिटिश शासन के प्रति शत्रुता से प्रेरित है|
(2) वे पत्र जो कांग्रेस का समर्थन करते हैं और 'तरुण भारत' के राजनैतिक अधिकारों की आकांक्षा समर्थन करते हैं और प्रश्नों पर संयम और बिना पक्षपात के विचार करते हैं|
(3) ऐसे पत्र जो ब्रिटिश नीति का बराबर समर्थन करते रहते हैं और सम्पूर्ण रूप से राजभक्त है|
(4) ऐसे पत्र जो नरम हैं और काफी राजभक्त है और प्रश्नों पर संयम और बिना पक्षपात के विचार करते हैं|
(5) ऐसे प्रकाशन जो ऊपर बताई हुई श्रेणी में नहीं आते और साधारणतः निर्दोष है|

19 वीं सदी के उतरार्ध से दुनिया में ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो रही थी जिनसे लोगों में ख़बरों को जानने की इच्छा बढ़ रही थी और यह इच्छा केवल समाचार-पत्रों से ही प्राप्त हो सकती थी सरकार के तौर-तरीकों और नीतियों के सम्बन्ध में भारतीय जनमत के सामने आने के लिए कोई वैधानिक साधन या राजनैतिक संगठन नहीं होने के कारण, समाचार-पत्र ही एकसाधन था जिनके जरिये जनता की मांग तथा उनकी शिकायतें सामने आ सकती थी| इस प्रकार से समाचार-पत्र प्रचार के वाहन के रूप में बहुत महत्वपूर्ण थे| इस समय राष्ट्रीय चेतना और जागरूकता की' लहर फैलनी शुरू हो गई थी, लेकिन सामूहिक भागीदारी वाले राष्ट्रीय आंदोलन का स्वरुप पूरी तरह नहीं उभर सका था| जनता को मुद्दों और सवालों से जोड़ने के लिए उस समय न तो प्रभावशाली संगठन बन पाये और न ही ऐसा कोई राजनीतिक कार्यक्रम सामने आ सका था, जिसमें जनता की भागीदारी हो सकती और जिसे जन-संघर्ष का रूप दिया जा सकता| उस समय सबसे पहला राजनीतिक कार्यक्रम यही था कि जनता का राजनीतिकरण किया जाए, राजनितिक चेतना का प्रचार-प्रसार किया जाए| चुंकि उस समय भारतीय जनता के पास न कोई संगठन था और न कोई संगठित राजनीतिक कार्यक्रम सामने था, इसलिए प्रेस ही उस समय एक ऐसा हथियार था, जिसके जरिये जनता को राजनीतिक रूप से शिक्षित-प्रशिक्षित किया जा सकता और था और राष्ट्रीय विचारधारा को विकसित किया जा सकता था|

भारतीय राष्ट्रवाद के इस प्रारंभिक दौर में कई निडर अख़बारों ने जन्म लिया| जी० सुब्रहमणयम अय्यर के संपादन में 'द हिन्दू' और 'स्वदेशिमत्रम', बाल गंगाधर तिलक के संपादन में 'केशरी' और 'मराठा', सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के संपादन 'बंगाली',शिशिर कुमार और मोतीलाल घोष के संपादन में 'अमृत बाज़ार पत्रिका', गोपालकृष्ण गोखले के संपादन में 'सुधारक',एन०एन० सेन के संपादन में 'इंडियन मिरर', दादाभाई नैरोजी के संपादन में 'हिन्दुस्तानी' और 'एडवोकेट ऑफ इंडिया' और पंजाब में 'द ट्रिब्यून' व 'अख़बार-ए-आम' तथा बंगाल में 'इंदुप्रकाश', बंग निवासी' और 'साधारनी' जैसे अख़बार अस्तित्व में आए|

निष्कर्ष

19वीं सदी के उतरार्द्ध में राजनीतिक संगठनो के निर्माण के बावजूद, राष्ट्रवाद का प्रमुख संवाहक प्रेस ही बना रहा| यहाँ तक कि तब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भी अपने कामकाज के लिए प्रेस पर निर्भर थी| राजनीतिक कार्यक्रम चलाने के लिए उस समय तक कांग्रेस का कोई संगठनात्मक आधार नहीं तैयार हो पाया था| इसके प्रस्तावों और कारवाईयों को भी जनता के बीच अख़बार ही पहुंचाते थे| राष्ट्रिय आन्दोलन की बुनियाद रखने में अख़बारों और पत्रकारों की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका थी, इसका अंदाज़ा इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि सन 1885 ई० में भारतीय राष्ट्रिय कांग्रेस की स्थापना जिन लोगों ने की, उनमें से करीब एक-तिहाई पत्रकार थे| जाहिर है कि राष्ट्रिय चेतना के विकास और राष्ट्रिय आन्दोलन के संचालन में प्रेस की भूमिका एक 'सेफ्टी-वाल्व' के तरह की थी|

सन्दर्भ-सूचि

1. समाचार पत्रों का इतिहास (अंश-उद्धृत 'हिंदी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास, सं० डॉ रमेश कुमार जैन)
2. समाचार पत्रों का इतिहास,पं० अम्बिका प्रसार वाजपेयी
3. स्वतंत्रता आन्दोलन और हिंदी पत्रकारिता, डॉ अर्जुन तिवारी
4. हिंदी पत्रकारिता के नए आयाम, डॉ बच्चन सिंह
5. भारतीय युगीन साहित्य में राष्ट्रिय भावना, पुष्पा थरेजा
6. हिस्ट्री ऑफ इंडियन जर्नलिज्म, जे० नटराजन